R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य–4 रुपये, वर्ष–17, अङ्क–8 अगस्त 2018

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

तीर्थधाम मङ्गलायतन

दशलक्षण महापर्व

शुक्रवार, दिनांक 14 सितम्बर से
रविवार, दिनांक 23 सितम्बर 2018

तीर्थधाम मङ्गलायतन : आगामी दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर **शुक्रवार, दिनांक 14 सितम्बर से रविवार, दिनांक 23 सितम्बर 2018** तक विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे। इस अवसर पर दशलक्षण मण्डल विधान, पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन, **आत्मार्थी भाई श्री हितेशभाई चोवटिया, मुम्बई** द्वारा प्रासंगिक स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होगा।

जो भी साधर्मीजन इस कार्यक्रम में पधारकर धर्मलाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे सादर आमन्त्रित हैं। यहाँ पर आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था है। कृपया अपने आगमन की सूचना अवश्य प्रदान करें।

सम्पर्क सूत्र :— 9997996346 (कार्यालय);
9897890893 (पण्डित अशोक लुहाड़िया); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

तीर्थधाम मङ्गलायतन के भव्य संकुल में
दीपावली के अवसर पर
कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन
एवं
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट
के संयुक्त तत्त्वावधान में

भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव एवं
आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(6 नवम्बर से 11 नवम्बर 2018 तक)

इस वर्ष की दीपावली तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में मनाकर जीवन सफल करें। अपने आने की पूर्व सूचना प्रदान करें। आमन्त्रणपत्रिका अगले अंक में दी जाएगी।

मङ्गलायतन

③

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-8 (वी.नि.सं. 2544) अगस्त 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

यदि ज्ञायक लक्ष से तू, श्रवण और चिन्तन करे।
कदाचित समकित न होवे, किन्तु सन्मुख तो बने॥
तीव्र हो संस्कार निज के, भले फिर उपयोग बदलो।
सूक्ष्म हो उपयोग जब फिर, आत्म दर्शन नियम से हो॥62॥

जीव जैसा बीज बोता, प्राप्त फल वैसा ही होता।
कार्य हो कारण के जैसा, फल मिले पुरषार्थ का॥63॥

चैतन्य, मंगल जगत में, और यही वंदन योग्य हैं।
निज तत्त्व है, उत्तम, शरण, अरु लोक में ये श्रेष्ठ है॥
बाह्य में, अर्हंत सिद्धाचार्य, पाठक मुनि नमन।
साध्य साधक यही है, भवि जीव के ये ही शरण॥64॥

देव गुरु की दिव्य वाणी, प्रभु की महिमा जगा।
निज आतमा की रुचि जगाये, निमित्त हैं ये सर्वदा॥65॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग–
श्री कश्यप,
चेतन जैन, बडोदरा
हस्ते **श्री अजित जैन,**
बडोदरा (गुज०)

क्या - कहाँ

सम्यग्दर्शन.. 5
सर्वज्ञ कथित वस्तुस्वरूप.................. 14
जब राजपुत्र प्रथम बार ही बोले,........ 17
आनंदमय चैतन्यगृह.......................... 19
नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है..... 21
आचार्यदेव परिचय श्रृंखला.............. 26
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला.................. 29
समाचार-दर्शन............................... 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

मोक्षमहल की पहली सीढ़ी
सम्यग्दर्शन

हे जीव! दुनिया की बात छोड़; दुनिया को दुनिया में रहने दे; तू अपने आत्मा की प्रतीति करके अपना हित साध ले। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी दुनिया को खबर नहीं है; वह किसी को इन्द्रियज्ञान से दिखाई दे, ऐसा नहीं है। अहा, सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में मोक्ष की मुहर लग गई और परम सुख का भंडार खुल गया; उसका तो जो अनुभव करे, उसे सच्ची खबर पड़ती है। ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीव! तुम धारण करो, बहुमानपूर्वक उसकी आराधना करो! हे सुज्ञ! समझदार आत्मा! तू समझ, तू चेत, तू सावधान हो, और प्रमाद छोड़कर शीघ्र सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यह उत्तम अवसर है; इसलिए एक क्षण भी खोए बिना अपने आत्मा की अखंड अनुभूतिसहित श्रद्धा करके सम्यग्दर्शन का दीप प्रज्वलित कर। हे भव्य! हे सुख के अभिलाषी मुमुक्षु! मोक्षसुख का कारणभूत ऐसा उत्तम कार्य तू शीघ्र कर!

सम्यग्दर्शन की अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढाल के अंतिम छंद में उसकी अत्यंत प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव! तू काल गँवाये बिना, इस पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण कर!

अहा, सम्यग्दर्शन का स्वरूप अचिंत्य है! हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शन को पहिचानकर अत्यंत महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर, जरा भी काल गँवाये बिना, तू सावधान हो और उसे प्राप्त कर; क्योंकि वह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष की पहली सीढ़ी है; ज्ञान या चारित्र कोई सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे नहीं होते। सम्यग्दर्शन से रहित सर्व ज्ञातृत्व और सर्व आचरण, वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है; इसलिए हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये बिना, सम्यग्दर्शन का सच्चा उद्यम कर। यदि

इस भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्य भव और जिनधर्म का ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

मोक्षरूपी महल में पहुँचने के लिए रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है, उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; उसके बिना ऊपर की सीढ़ियाँ (श्रावकपना, मुनिपना आदि) नहीं होती। नसैनी की पहली सीढ़ी जिससे नहीं चढ़ी जाती, वह बाकी सीढ़ियाँ चढ़कर मोक्ष में कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शन के बिना सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव, वे कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं हैं, वह तो संसार में उतरने का मार्ग है। राग को जिसने मार्ग माना, वह तो संसार के मार्ग में है; राग के मार्ग पर चलकर कहीं मोक्ष में नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्ष का मार्ग तो स्वानुभवयुक्त-सम्यग्दर्शन है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा, वह मोक्षरूपी आनंदमहल है और अंशत: शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। अंशत: शुद्धता के बिना पूर्ण शुद्धता के मार्ग पर कहाँ से पहुँचा जाएगा? अशुद्धता के मार्ग पर चलने से कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है?—मोक्ष कोई त्रैकालिक द्रव्य या गुण नहीं है, परंतु वह तो जीव के ज्ञानादि गुणों की पूर्ण शुद्धदशारूप कार्य है; उसका पहला कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का लक्ष्य पूर्ण शुद्ध आत्मा है; उस पूर्णता के ध्येय से पूर्ण के ओर की धारा उल्लसित होती है; बीच में रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों, परंतु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है, वह कहीं मोक्ष की सीढ़ी नहीं है। सम्यक्ता कहो या शुद्धता कहो; ज्ञान-चारित्रादि की शुद्धि का मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग, वह कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है; राग का फल सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शन का फल शुभराग नहीं है, दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं।

आत्मा शांत वीतरागस्वभाव है; वह पुण्य द्वारा, राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनुभव में नहीं आता; परंतु सीधा स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव हो, तब सम्यग्दर्शन होता

है और तभी मोक्षमार्ग खुलता है। अनंत जन्म-मरण के नाश के उपाय में तथा मोक्ष के परमानंद की प्राप्ति में सम्यग्दर्शन ही पहली सीढ़ी है, उसके बिना ज्ञान का ज्ञातृत्व या शुभराग की क्रियाएँ, वह सब निरर्थक हैं। उससे धर्म का फल जरा भी नहीं आता; इसलिए वह सब निरर्थक है। नवतत्त्वों की मात्र व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञातृत्व या पंचमहाव्रतादि शुभ आचार, वह कोई राग आत्मा के सम्यग्दर्शन के लिए किंचित् कारणरूप नहीं है; विकल्प की सहायता द्वारा कभी निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती। सम्यक्त्वादि की भूमिका में उसके योग्य व्यवहार होता है, इतनी उसकी मर्यादा है, परंतु वह व्यवहार है, इसलिए उसके कारण निश्चय है-ऐसा नहीं है। व्यवहार के जितने विकल्प हैं, वे सब आकुलता और दुःख हैं, आत्मा के निश्चयरत्नत्रय ही सुखरूप और अनाकुल हैं। ज्ञानी को भी विकल्प, वह दुःख है; विकल्प द्वारा कहीं आत्मा का कार्य ज्ञानी को नहीं होता; उसी समय उससे भिन्न ऐसे निश्चयश्रद्धा-ज्ञानादि अपने आत्मा के अवलंबन से उसको वर्तते हैं और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे निरपेक्ष निश्चयसहित जो व्यवहार हो, वह व्यवहाररूप से सच्चा है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान या चारित्र में यथार्थता नहीं आती अर्थात् मिथ्यापना रहता है। सम्यग्दर्शन के बिना सब झूठा?—हाँ, मोक्ष के लिए वह सब निरर्थक है; धर्म के लिए वह सब बेकार है। शास्त्रज्ञान की बातें करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण द्वारा न्याय समझाए, अथवा व्रतादि आचरणरूप क्रियाओं द्वारा लोक में वाहवाह हो, परंतु सम्यग्दर्शन के बिना उसका ज्ञान और आचरण सब मिथ्या है, उसमें आत्मा का किंचित् हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं, आत्मा का सुख नहीं है।

व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वे सम्यग्दर्शन के बिना कैसे हैं?—तो कहते हैं कि वे सम्यक्ता को प्राप्त नहीं होते अर्थात् सच्चे नहीं किंतु मिथ्या है, उनके द्वारा मोक्षमार्ग नहीं सधता। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही सच्चे ज्ञान-चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है, इसलिए वह धर्म का मूल है।

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीवो! तुम धारण करो, बहुमानसहित उसकी आराधना करो! हे सयाने आत्मा! तू चेत, समझ और काल गँवाए बिना शीघ्र ही उस सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर। यह उत्तम अवसर है, फिर यह मनुष्य भव प्राप्त होना दुर्लभ है। हे भव्य! हे सुखाभिलाषी! सुख के लिये तू इस उत्तमकार्य को शीघ्र कर!—शीघ्र अपने आत्मा को पहिचान।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने भी कहा है कि—('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्मा के सर्व गुणों की पूर्णशुद्धता, सो मोक्ष है।

('सर्वगुणांश सो सम्यक्त') आत्मा के सर्व गुणों की अंशतः शुद्धता, सो मोक्षमार्ग है।

आत्मा में जैसा ज्ञानानंदस्वभाव त्रिकाल है, वैसा पर्याय में प्रगट हो, उसका नाम मोक्ष; और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका कारण, वह मोक्षमार्ग है; उसमें भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है ? कि—

'परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि, सम्यक्त्व भला है।'

परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की रुचि, सो सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थी को ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिए। मैं ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा हूँ; शरीरादि अजीव मैं नहीं हूँ, रागादि आस्रव भी मैं नहीं हूँ, रागादि से भिन्न अपने आत्मा की अनुभूति करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हुआ, उस काल शास्त्राभ्यास या संयम न हो, तथापि मोक्षमार्ग प्रारंभ हो जाता है। श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—'अनंत काल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को क्षणमात्र में जात्यंतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।'

ऐसे सम्यग्दर्शन का सच्चा स्वरूप इस जीव ने अनंत काल में नहीं समझा और विकार को ही आत्मा मानकर उसी के अनुभव में रुक गया है। अधिक किया तो पाप छोड़कर शुभराग में आया परंतु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है और उसके अनुभव से कहीं

सम्यग्दर्शन नहीं होता। '**भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी**'—भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि होता है। सर्व तत्त्वों के सच्चे निर्णय का समावेश सम्यग्दर्शन में होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणों में रागादि का अंधकार नहीं है; शुभाशुभराग, वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभाव को जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना, सो अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

'परमात्मप्रकाश' में कहते हैं कि—अनंत काल संसार में भटकता हुआ जीव दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं कर सका; एक तो जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्य में तो जिनवरस्वामी मिले परंतु स्वयं उनके सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना, इसलिए उसे जिनवरस्वामी नहीं मिले—ऐसा कहा है। जिनवर का स्वरूप पहिचानने से सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्र को भगवान के मार्ग की अर्थात् सच्चाई की छाप नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्मा को श्रद्धा में लिया, तब ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभव में लिए हुए अपने शुद्धात्मा में लीन होने से चारित्र भी सच्चा हुआ; इसलिए कहा कि—

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा,
सम्यक्ता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥

धर्म की पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किंतु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा देते हैं। इसलिए हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्व को अर्थात् निश्चय सम्यक्त्व को तू शीघ्र धारण कर; काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट कर। आत्मबोध बिना शुभराग से तो मात्र पुण्यबंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है; और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी कहीं राग, वह मोक्षमार्ग नहीं है; रागरहित जो रत्नत्रय, वही मोक्षमार्ग है; जितना राग है, उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है; निश्चय सम्यग्दर्शन, वह पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्प से

भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति करना, वह सच्चा सम्यक्त्व है, वह मोक्ष का सोपान है; इसलिए शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर ऐसे सम्यक्त्व को धारण करने का उपदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्व की ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसर में सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। पुनः-पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घ संसार में परिभ्रमण का कहीं अंत नहीं आएगा; इसलिए हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्याय को संभालो! उसे अंतर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। अपनी पर्याय के कर्ता तुम हो; भगवान तो तुम्हारी पर्याय के दृष्टा हैं परंतु कर्ता नहीं हैं, कर्ता तो तुम्हीं हो। इसलिए तुम स्वयं आत्मा के उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन-पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है, उसे जाने बिना अनंत बार यह जीव स्वर्ग में गया, परंतु वहाँ किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, संसार में ही भटका। सुख का कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानी को करोड़ों जन्म तक तप करने से जो कर्म खिरते हैं, वे ज्ञानी को आत्मज्ञान द्वारा एक क्षण में टल जाते हैं, इसलिए कहा है कि—'ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन...'

तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीव को सुख का अंशमात्र भी अनुभव नहीं होता, अर्थात् धर्म नहीं होता।

जो समझदार है, जो आत्मा को भवदु:ख से छुड़ाने तथा मोक्षसुख के अनुभव के लिए सम्यक्त्व का पिपासु है, ऐसे भव्य जीव को संबोधन करके सम्यग्दर्शन की प्रेरणा देते हैं कि—अरे प्रभु! यह तेरे हित का अवसर आया है, तू कोई मूढ़ नहीं किंतु समझदार है, सयाना है, हित-अहित का विवेक

करनेवाला है, जड़-चेतन का विवेक करनेवाला है; इसलिए तू श्रीगुरु का यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरंत सम्यग्दर्शन धारण कर। यहाँ तक आकर अब विलंब न कर। शरीरादि से भिन्न आत्मा का अनुभव कर, उसका तीव्र उद्यम कर।

'समझ, सुन, चेत, सयाने!' हे सयाने जीव! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर अविलंब सम्यक्त्व को धारण कर। मोह का अभाव करके सावधान हो, और अपनी ज्ञानचेतना द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को चेत... उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ परमात्मा में जो है, वह सब तेरे आत्मा में भी है—ऐसा जानकर प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृग की भाँति बाह्य में मत ढूँढ़, अंदर है, उसे अनुभव में ले।

संसार में भटकते-भटकते अनंत काल में बड़ी कठिनाई से यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ; उसमें ऐसा जैनधर्म और सत्समागम मिला, सम्यक्त्व का ऐसा उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस अवसर को व्यर्थ गँवा दे? भाई, काल गँवाये बिना अंतरंग उद्यमपूर्वक तू निर्मल सम्यग्दर्शन धारण कर। चार गतियों में तूने बहुत दुःख सहे, अब उन दुःखों से छूटने के लिए आत्मा की यह बात सुन। यह तेरा समझने का काल है, सम्यग्दर्शन का अवसर है, इसलिए इसी समय सम्यग्दर्शन प्रगट कर। देखो, कैसा संबोधन किया है! [भोगभूमि में भी भगवान ऋषभदेव के जीव को सम्यग्दर्शन का उपदेश देकर मुनिराज ने ऐसा कहा था कि—हे आर्य! तू इसी समय इस सम्यक्त्व को ग्रहण कर... तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह काल है। 'तत् गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एषते'... और सचमुच उस जीव ने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया।] उसी प्रकार यहाँ भी कहते हैं कि—हे भव्य! तू अविलंब—इसी समय सम्यक्त्व को धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है, उतना ही तू है; अजीव से तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममत्व से भी आत्मा का स्वभाव भिन्न है; ऐसे आत्मा की

प्रतीति बिना अनंत काल व्यर्थ गँवा दिया, परंतु अब यह उपदेश सुनने के बाद तू एक क्षण भी मत गँवाना; एक-एक क्षण अति मूल्यवान है, बहुमूल्य मणिरत्नों की अपेक्षा मनुष्यभव महँगा है और उसी में इस सम्यग्दर्शन-रत्न की प्राप्ति महादुर्लभ है। अनंत बार मनुष्य हुआ और स्वर्ग में भी गया परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सका—ऐसा जानकर अब तू व्यर्थ काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन प्रगट कर। उद्यम करे तो तेरी काललब्धि पक ही गई है, पुरुषार्थ से काललब्धि भिन्न नहीं है; इसलिए हे भाई! इस अवसर में आत्मा को समझकर उसकी श्रद्धा कर!

पर के कार्य तेरे नहीं हैं और परवस्तु तेरे काम की नहीं है; आनंदकंद आत्मा ही तेरा है, उसी को काम में ले, श्रद्धा-ज्ञान में ले। परवस्तु या पुण्य-पाप तेरे हित के काम नहीं आएँगे, अपने ज्ञानानंदस्वभाव को श्रद्धा में ले, वही तुझे मोक्ष के लिए कार्यकारी हैं। समयसार में आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। जिस प्रकार माता बच्चे का पालना झुलाते हुए गीत गाती है कि 'मेरा मुन्ना बड़ा सयाना...' उसी प्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू भगवान है... तू सयाना-समझदार है, इसलिए मोह छोड़कर जाग और अपने आत्मस्वभाव को देख... आत्मस्वभाव का सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का दाता है। सम्यग्दर्शन हुआ कि मोक्ष अवश्य होगा। तेरे गुणगान करके संत तुझे जगाते हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त कराते हैं।

आत्मा अखंड ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, वह पवित्र है; पुण्य-पाप तो मलिन हैं, उनमें स्व-पर की जानने की शक्ति नहीं है, और भगवान आत्मा तो स्वयं अपने को तथा पर को भी जाने, ऐसा चेतकस्वभावी है।—ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शन से रहित सब एकरहित शून्य के समान हैं, धर्म में उसका कोई मूल्य नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अंतर में चैतन्य के शांतरस का वेदन है। अहा, उस शांति के अनुभव की क्या बात! श्रेणिक राजा वर्तमान में नरकगति में होने पर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से वहाँ के दु:ख से

भिन्न ऐसे चैतन्यसुख का वेदन भी उनको वर्त रहा है। पहले मिथ्यात्वदशा में महापाप से उन्होंने सातवें नरक की असंख्यवर्ष की आयु का बंध कर लिया, परंतु बाद में महावीरस्वामी के समवसरण में वे क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त हुए और सातवें नरक की आयु तोड़कर पहले नरक की मात्र 84000 चौरासी हजार वर्ष की आयु कर दी। वे राजगृही के राजा गृहस्थाश्रम में अव्रती थे, तथापि क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया; नरकगति नहीं बदल सकी परंतु उसकी स्थिति तोड़कर असंख्यातवें भाग कर दी। नरक की घोर यातनाओं के बीच भी उससे अलिप्त ऐसी सम्यग्दर्शन परिणति के सुख का वह आत्मा वेदन कर रहा है। 'बाहर नारकीकत दु:ख भोगै, अंतर सुखरस गटागटी।'—इस प्रकार सम्यग्दर्शनसहित जीव नरक में भी सुखी है, और सम्यग्दर्शन के बिना तो स्वर्ग में भी दु:खी है। श्री परमात्मप्रकाश में कहा है कि—सम्यग्दर्शनसहित तो नरकवास भी अच्छा है और सम्यग्दर्शन से रहित देवलोक में निवास भी अच्छा नहीं... अर्थात् जीव को सर्वत्र सम्यग्दर्शन ही इष्ट है, भला है, सुखकारी है, इसके बिना जीव को कहीं सुख नहीं है। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आत्मरस का वेदन है; देवों के अमृत में भी उस आत्मरस का सुख नहीं है। मनुष्य जीवन की सफलता सम्यग्दर्शन से ही है, स्वर्ग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है, तीन लोक में सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। ज्ञान और चारित्र भी सम्यग्दर्शनसहित हों, तभी श्रेष्ठता को प्राप्त होते हैं।

जय हो सम्यग्दर्शन धर्म की....!

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

नहिं विद्या नहिं मित्रता, नाहीं धन सनमान।
नहीं न्याय नहिं लाज भय, तजौ बास ता थान॥

अर्थात् जहाँ विद्या की प्राप्ति नहीं, मित्रता नहीं, धन-सम्मान नहीं, न्याय नहीं, लज्जा और भय नहीं है; उस स्थान को छोड़ देना चाहिए।

भाव यह है कि मात्र समय बिताने के लिए जीवन नहीं है; वरन् कुछ उपलब्ध करने के लिए है; अत: जहाँ उसकी संभावना ही नहीं है; उस स्थान को छोड़ देना चाहिए। ***बुधजन सतसई, सुभाषित नीति, दोहा २५४***

सर्वज्ञ कथित वस्तुस्वरूप

सूक्ष्मता से यथार्थ वस्तुस्वरूप समझने पर अपनी पर्याय के लिये पर-सन्मुख देखने की आवश्यकता नहीं रहती और पर से भिन्न स्वद्रव्य की सन्मुखता होती है। आत्मभूत सत्‌लक्षण के ज्ञान द्वारा पराश्रय की श्रद्धा छूटकर निर्मल भेदज्ञान और मोक्षमार्ग प्रगट होता है। धर्म का मूल सर्वज्ञ है; सर्वज्ञदेव कथित भेदज्ञान द्वारा वीतरागधर्म की प्राप्ति होती है।

नित्य-अनित्यस्वरूप जो सत् वस्तु; उसका अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं है, फिर भी सब द्रव्यों में अस्तित्व-सत्तागुण की अपेक्षा संग्रहनय से देखने पर महासत्ता एक है, उसमें सबका स्वरूप-अस्तित्व सदा पृथक्-पृथक् ही है। महासत्ता एक का प्रतिपक्ष-अवांतरसत्ता अनेक है। प्रत्येक वस्तु में स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव से स्वरूप-अस्तित्व है। जो वस्तु द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य है, वही वस्तु उसी समय पार्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्ययरूप पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

पर्याय के कारण से पर्याय है, ध्रुव के कारण ध्रुव है। यह है तो दूसरे का अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। प्रत्येक चेतन द्रव्य के चतुष्टय अरूपी ज्ञानमय होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (गुण की क्रिया) सदा अरूपी ही हैं, अतीन्द्रिय-ग्राह्य हैं, उसके प्रतिपक्ष में पुद्गलद्रव्यों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टय सदा रूपी ही होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (स्पर्श-रस-गंध-वर्णादि गुणों की क्रिया) सदा रूपी ही हैं; सूक्ष्म पुद्गलपरमाणु और सूक्ष्म स्कंध रूपी होने पर भी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य नहीं है। परमाणु अपनी स्व-शक्ति से रंग या स्पर्शादि की नई-नई पर्याय की उत्पत्तिपूर्वक पूर्वपर्याय का व्ययरूपी निजकार्य निरंतर अपने से करता है; स्वरूप-अस्तित्व तीनों काल प्रत्येक जीव-अजीव को स्वतंत्र सत्तारूप बतलाता है।

प्रत्येक जीव-अजीव अपने से ही अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में एक-अनेक, नित्य-अनित्यात्मक है। ऐसा होना पर के कारण से नहीं, पूर्व पर्याय के कारण नहीं, कोई संयोगरूप निमित्त के कारण से नहीं, अपने उपादान (निजशक्ति) का कार्य ऐसा है। आत्मा का ज्ञानगुण भी नित्य और परिणामी है; इसलिए निरंतर ज्ञान की पर्याय ज्ञान से है, श्रद्धा की पर्याय श्रद्धा से है, सुख की पर्याय अपनी ही योग्यता के अनुरूप सुख द्वारा है; पर के अस्तित्व द्वारा है, ऐसा नहीं है।

सब कथनों में सार प्रयोजनभूत तो पर से भिन्न और अपने ज्ञानानंदमय चैतन्यस्वरूप से अभिन्न आत्मा है, उसे पहचानकर पर में कर्तृत्व-ममत्व माननेरूप मिथ्याश्रद्धा छोड़ना चाहिए। प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र सत् स्व से है, पर से नहीं है—ऐसा स्पष्ट भावभासनरूप अनुभव करे तो अपूर्वदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन होता ही है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु अपनी प्रभुता से पूर्ण है; इस प्रकार अंतर्दृष्टि होने पर ज्ञानपर्याय सम्यक् हुई, यह नियम है; किंतु सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, इसलिए सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट हुई, ऐसा नहीं है। एकसाथ आत्मा में अनंत गुणों की अनंत पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप से परिवर्तन क्रिया करती हैं।

सब अपनी भूमिका के अनुसार अपनी-अपनी योग्यता से है, पर के कारण से नहीं—ऐसा प्रथम स्वीकार करे तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिए निमित्त की मुख्यता से कथन उचित है। कभी भी निमित्त की मुख्यता से कार्य नहीं होता, ऐसा नियम है। पर द्वारा यह कार्य हुआ, ऐसा कथन उपचार-व्यवहारनय का है, परमार्थ नहीं है; और जो जीव व्यवहारकथन को निश्चयकथन मान ले तो वह स्वतंत्र सत् का नाश करनेवाला मिथ्यादृष्टि है।

यह तो तत्त्व की बात है। सत् स्वतंत्र है; किसी के कार्य में किसी अन्य की सहायता नहीं है। अनंत आत्माओं की जो पर्यायें हैं, उन्हें संग्रहनय द्वारा महासत्ता कहा, उनके प्रतिपक्ष में उसी समय एक आत्मा का स्वरूप-

अस्तित्व है, यह अवान्तरसत्ता है, जो अपने रूप से है, किंतु पर से है, ऐसा नहीं है।

भगवान ने अपने रागरहित ज्ञान में शब्द-अर्थ और ज्ञानरूप सत्ता को स्पष्ट जाना है। प्रत्येक सत् का अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं है। केवलज्ञान के कारण दिव्यवाणी है, ऐसा नहीं, प्रत्येक वस्तु के कार्यकाल में अपनी शक्ति से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व है, अन्य तो निमित्तमात्र हैं, ऐसा समझे बिना और स्वसन्मुख दृष्टि किए बिना उनके माने हुए व्रत-तप-जप, दया, दान के भाव व्यवहार साधन भी कहलाने योग्य नहीं हैं। ज्ञान का विकास हो, उतना क्षयोपशम होता है, किंतु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो, तब ज्ञान की पर्याय होती है, ऐसी पराधीनता नहीं है। जड़कर्म में कुछ हुआ, इसलिए ज्ञान में हीनाधिकता है, ऐसा अर्थ नहीं है। जहाँ निमित्त से कथन किया हो, वहाँ उपादान वस्तु की योग्यता कैसी है, वह बतलाना है।

काशी में जाकर यह बड़ा पंडित हुआ, इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि काशीक्षेत्र से ज्ञान हुआ। ज्ञान, ज्ञान से हुआ है। पूर्व पर्याय से, जड़कर्म से, राग से, वाणी से या गुरु से ज्ञान नहीं होता। निमित्त तो निमित्तमात्र है, दूर ही है। एक द्रव्य में दूसरे का प्रवेश नहीं है। प्रथम ही स्व-आश्रय से निर्णय करना चाहिए, अपने को देखना चाहिए, अन्यथा सुख-संतोष नहीं होगा।

ऐसा नहीं है कि शिक्षक बड़ा विद्वान था, इसलिए शिष्य को ज्ञान हुआ। पर से कुछ नहीं आया; वाणी की दशा पुद्गलपरमाणु से हुई; ज्ञान की अवस्था अपनी योग्यता से ज्ञान के कारण हुई है। अपना आत्मा नित्य चिदानंद भगवान है, अंदर उत्पाद-व्यय उत्पाद-व्यय से है; ध्रुवसत्ता ध्रुवत्व से है; ऐसा नहीं है कि उसके स्वरूपअस्तित्व से दूसरी पर्याय है। यहाँ लक्षणदृष्टि से सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का कथन है। सूक्ष्मता से वस्तुतत्त्व समझने से भावभासनरूप स्पष्ट ज्ञान (पक्का ज्ञान) होता है।

प्रश्नः—यदि ऐसा माना जाए कि-विकार जीव ने किया, तो स्व से

......शेष पृष्ठ 18 पर

जब राजपुत्र प्रथम बार ही बोले, —क्या बोले ?

भरत चक्रवर्ती चिंता में हैं, अनेक रानियाँ चिंता में हैं; क्योंकि उनके अनेक राजकुमार कुछ बोलते नहीं हैं। जन्म से अब तक गूँगे ही हैं; वर्षों बीत जाने पर भी अभी तक एक भी शब्द उनके मुख से निकला नहीं। राजकुमार मुख से कुछ बोलें, इसके लिए अनेक युक्ति-उपाय किए गए परंतु वे न बोले, सो नहीं ही बोले! अरे, चक्रवर्ती के रूपवान राजकुमार क्या जीवन भर गूँगे ही रहेंगे ? क्या वह बोलेंगे नहीं ?—ऐसी चिंता में भरत चक्रवर्ती परेशान थे।

इसी बीच में भगवान ऋषभदेव अयोध्यापुरी में पधारे... भरत महाराजा उनके दर्शन करने गए... साथ में इन गूँगे राजकुमारों को भी ले गए। (समवसरण में तीर्थंकर का ऐसा अतिशय होता है कि वहाँ गूँगा भी बोलने लगता है, अन्धा भी देखने लगता है।) राजा ने भगवान के दर्शन किए, राजकुमारों ने भी भक्तिभाव से अपने दादा के दर्शन किए—परंतु अभी तक उनमें से कोई भी बोला नहीं।

अंत में भरत चक्रवर्ती ने पूछा—हे प्रभो! महा पुण्यशाली यह राजकुमार कुछ बोलते क्यों नहीं ? क्या ये गूँगे हैं ? तब भगवान की वाणी में आया—हे भरत! यह कुमार गूँगे नहीं हैं; जन्म से ही वैराग्यचित्त के कारण वे कुछ बोलते नहीं थे। परंतु वे अवश्य अभी बोलेंगे।

पुत्र गूँगे नहीं हैं—यह जानकर भरत को प्रसन्नता हुई, अब वे राजकुमार क्या बोलेंगे, यह जानने को सभी उत्सुक थे। इतने में वे वैरागी राजकुमार एकसाथ परम विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले-मानों उनके अंतर में से मधुर झनकार छूटी, 'हे प्रभो! हमें मोक्ष की कारणरूप मुनिदीक्षा प्रदान कीजिए! हमारा चित्त इस संसार से उदास है; इस संसार में और परभाव में हमें जरा भी चैन नहीं है, हम अपने निजस्वभाव के मोक्षसुख का अनुभव करना चाहते हैं—इसलिए हमें रत्नत्रयरूप मुनिदीक्षा दीजिए, जिससे हम केवलज्ञान प्रगट करके इस भवबंधन से छूटें'—जीवन में प्रथम बार ही राजकुमार बोले और इतना उत्तम बोले!

वाह! भरत चक्रवर्ती और सभाजन तो राजकुमारों के शब्द सुनकर स्तब्ध ही रह गए, लाखों-करोड़ों देवों-मनुष्यों ने उनकी प्रशंसा की, तिर्यंचों की सभा भी आश्चर्य से इन वैरागी राजकुमारों को देखने लगी। राजकुमार तो अपने वैराग्यभाव में मग्न हैं। प्रभु-सन्मुख आज्ञा लेकर मुनि हो गए, वचन-विकल्प छोड़कर निजानंद में लीन होकर वचनातीत आनंद का अनुभव करने लगे, अल्प काल में केवलज्ञान प्रगट करके उनने सिद्धपद प्राप्त किया।

[इन राजकुमारों का जीवन हमें यह बोध देता है कि हे जीव! उतने ही वचन बोल, जितने तेरे आत्महित में प्रयोजनवान हों, निष्प्रयोजन कोलाहल में मत पड़।]

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

पृष्ठ 16 का शेष...

सर्वज्ञ कथित वस्तुस्वरूप

सत् मानने के कारण विकार जीव का स्वभाव हो जाता है। इसलिए इस दोष के भय से रागादि विकार जड़कर्म आदि पर के कारण माना जाए तो?

उत्तर:— नहीं, विकारी अशुद्धदशा भी अनित्य पर्यायस्वभाव है, जीव का स्वतत्त्व है, अशुद्ध निश्चयनय से जीव उसका कर्ता है। पंचास्तिकाय गाथा 62 में कहा है कि अशुद्धत्व में भी कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान-अपादान-अधिकरण, यह छहों कारक स्वतंत्र हैं। अपनी पर्याय में चारित्रगुण की अशुद्ध उपादानरूप रागपर्याय स्वतंत्र है; उसे ही निश्चय से स्व से सापेक्ष और व्यवहार से परसापेक्ष कही है। अशुद्ध उपादानरूप पर्याय आस्रवतत्त्व में आ जाती है, अत: वह जीवतत्त्व का लक्षण नहीं होने से (स्व-पर को जाने वह चेतन, स्व-पर को न जाने वह अचेतन; इस लक्षण द्वारा) वह अजीवतत्त्व है, ऐसा स्वाश्रय ज्ञान द्वारा जानकर नित्य एकरूप त्रैकालिक निजपरमात्मतत्त्व को उपादेय मानना, वह परमार्थ श्रद्धा है। इस अपेक्षा सामान्य जीवतत्त्व रागादि परभावों का अकारक कहा है, और

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

रत्नत्रय के महा निधान से सुशोभित

आनंदमय चैतन्यगृह

[धनतेरस के दिन श्री नियमसार गाथा 136 पर पूज्य श्री कानजीस्वामी का प्रवचन]

जिसमें रत्नत्रय का भंडार भरा है, ऐसे निज-परमात्मा को प्राप्त करनेवाला जीव कैसा है ? अर्थात् निज-परमात्मा की अनुभूति द्वारा जो मोक्षमार्ग को साध रहा है, वह जीव कैसा है ?—उसका वर्णन है। उस जीव को मोक्ष की निश्चयभक्ति है अर्थात् अपने परमात्मा की भक्ति है।

अपने चैतन्य-परमात्मसमुद्र में से आनंद का अमृत पीने में वह जीव अभिमुख है; वह रागादि विकल्पों के सन्मुख नहीं है, उनसे तो विमुख है—भिन्न है और अंतर में अपने अनंत आनंद के समुद्र में अभिमुख होकर आनंदरस का पान करने में तत्पर है। आनंद का समुद्र मैं स्वयं ही हूँ—ऐसी अभेद अनुभूति द्वारा स्वयं आनंदरूप हुआ है; ऐसा मोक्षमार्ग है, उसमें कोई भेद-कल्पना नहीं है, विकल्प नहीं है, दु:ख नहीं है, अशांति नहीं है। अरे, चैतन्य के वेदन में विकल्प कैसे ? चैतन्यवस्तु स्वयं विकल्परहित है।

अहा, ऐसी चैतन्यवस्तु मैं हूँ—इस प्रकार स्वतत्त्व की परम महिमापूर्वक अपने स्वरूप का निर्णय करना, वही अनुभूति का मार्ग है। चैतन्यसूर्य उदित होने का सरल मार्ग यह है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। अंतर का मार्ग तो अंतर में ही होगा न ! शांति तो अंतर में है, बाह्य में कहीं शांति नहीं है।

आत्मा स्वसन्मुख होकर जहाँ सम्यक्‌रत्नत्रयरूप परिणमित हुआ, वहाँ वह मोक्षमार्ग में स्थित हुआ। उसके सम्यक्‌रत्नत्रय रागरहित हैं, उनमें भेद नहीं है, विकल्प नहीं है, उनमें तो चैतन्य के परम आनंदरस का पान है। ऐसी शुद्ध मोक्षमार्गरूप परिणति में जो अपने आत्मा को परिणमित करे, वह जीव मोक्ष की परम भक्ति करनेवाला अर्थात् मोक्ष का आराधक है।

आज 'धनतेरस' है। अज्ञानी लोग बाह्य धन की भावना भाते हैं, परंतु सच्चा धन ऐसा जो निजस्वरूप; उसके सन्मुख होकर स्वरूप की लक्ष्मी का

स्वसंवेदन करना, वही धन्य है! आत्मा को चैतन्यलक्ष्मी को भजना, वह मोक्षसम्पदा की प्राप्ति का कारण है।

भाई, तुझे आनंदरस पीना हो तो अपने आत्मा को राग में से उठाकर अपनी निर्मलपर्याय में स्थापित कर। अपने परिणाम को परमतत्त्व के सन्मुख कर, उसी में आनंदरस का अनंत सागर भरा है। भाई, तेरा चैतन्यतत्त्व आनंद से भरपूर है, तेरा निजगृह आनंद से सुशोभित है। ऐसे आनंदमय निजगृह में वास करने से आत्मा स्वयं महा शुद्ध सम्यक्‌रत्नत्रयरूप परिणमित होता है अर्थात् स्वयं मोक्षमार्ग में स्थित होता है। पहले राग में एकता के कारण दु:ख से पीड़ित था; अब राग से भिन्न चेतना द्वारा आनंद का अनुभव करता है। स्व में सन्मुख और पर से विमुख होना, उसमें अन्य की अपेक्षा कहाँ है? अन्य परमात्मा की ओर के भाव द्वारा भी निजपरमात्मा के सन्मुख नहीं हुआ जाता। अपना परमात्मतत्त्व अपने से ही शोभायमान है, उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है, वह अद्‌भुत आनंदकारी है।

वीतरागी देव-गुरु ने ऐसा तत्त्व कहा है, उसे जान तो लिया, परंतु ज्ञान जब तक वीतरागी देव-गुरु के ही सन्मुख रहे और स्व में परिणाम न लगाये, तब तक आत्मतत्त्व की स्वानुभूति नहीं होगी। स्वानुभूति तो अंतर्मुख परिणाम है, वह बहिर्मुख परिणाम द्वारा कैसे होगा? बाह्योन्मुखता से अंतर में कैसे आया जाएगा? अंतर का मार्ग तो परम निरपेक्ष, मात्र निज-स्वभाव में समाता है। चैतन्यचमत्कारी आत्मवस्तु ही कोई अद्‌भुत है कि जो अकेली अपने में से ही मोक्षमार्ग निकालकर उसमें स्वयं स्थित और आनंद से स्वयं सुशोभित होती है।

अहा, उत्कृष्ट शांति का धाम, अनंत सुख का धाम ऐसा यह चैतन्यगृह! वह महान रत्नत्रय के भंडार से सुशोभित है, उसमें कोई विपदा नहीं है; उसे किसी अन्य की सहायता या आधार नहीं है, आत्मा निराधाररूप से स्वयं अपने चैतन्यधाम में स्वभाव से स्थित रहनेवाला—सुशोभित होनेवाला-मोक्षमार्ग में चलनेवाला है। भाई, अंतर्मुख हुए बिना ऐसा मार्ग नहीं मिल सकता। [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है

‘समयसार-नाटक’ द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[श्री समयसार-नाटक के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचन]

जिन शास्त्रों में छह द्रव्यों का वर्णन किया है, उनमें जीव का स्वरूप जानकर उसका अनुभव करना चाहिए। जीवादि नव तत्त्वों का सच्चा ज्ञान भी भेदज्ञान तथा आत्मानुभव का कारण है। उनमें प्रथम जीवतत्त्व कैसा है ?

समता रमता ऊरधता ज्ञायकता सुखभास।
वेदकता चैतन्यता ये सब जीव विलास॥26॥

प्रथम 20 श्लोकों में छह द्रव्यों में से जीवद्रव्य का वर्णन था, और इस श्लोक में नवतत्त्वों में से जीवतत्त्व का वर्णन है।

‘समता’ अर्थात् वीतरागभाव में रमणतारूप लीनता, वह जीव का स्वभाव है। राग में रमे, ऐसा जीव का स्वभाव नहीं है। वीतरागी समभाव में रमे, ऐसा जीव का स्वभाव है। तथा ऊर्ध्वगमन भी उसका स्वभव है। मोक्ष होने पर ऊर्ध्वगमन करके सिद्धालय में निवास करता है। तथा जीव ज्ञायकस्वभाव है, ज्ञायकपना ही उसका स्वभाव है।

‘रमता’ अर्थात् रम्यता; जगत में आत्मा ही रम्य वस्तु है, उसी से सब शोभायमान है तथा आत्मा को स्वभावकी ऐसी ‘ऊर्ध्वता’ अर्थात् मुख्यता है कि उसकी विद्यमानता में ही जगत के पदार्थों में सबसे आगे, सबसे मुख्य, सबसे उच्च, सबसे प्रधान वस्तु आत्मा ही है।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने इस समयसार नाटक को पढ़कर 26 और 27वें श्लोक का सुंदर अध्यात्म अर्थ लिखा है जो निम्नानुसार है:—

‘जीव’ नाम का पदार्थ जैसा है, वैसा श्री तीर्थंकर परमदेव ने स्पष्ट जाना है, अनुभव किया है, तथा उसी प्रकार प्रगट कहा है। हम स्वयं स्पष्ट

प्रगटरूप से ऐसे आत्मा हैं, और तुम्हारे आत्मा को तुम भी ऐसा ही समझो।

— आत्मा कैसा है ? प्रथम तो 'समता' लक्षण से युक्त है। वर्तमान में जैसी असंख्य प्रदेशात्मक चैतन्यस्थिति है, वैसी ही तीनों काल उसकी स्थिति है। उसका असंख्य प्रदेशत्व, चैतन्यत्व, अरूपित्व आदि कोई स्वभाव किसी भी काल में छूटता नहीं है, सदा ज्यों का त्यों रहता है—ऐसा 'समपना' अर्थात् 'समता' आत्मा का लक्षण है।

तथा आत्मा में 'रमता' है, रमता अर्थात् रम्यता, रमणीयता, सुंदरता। श्रीमद् राजचंद्र कहते हैं कि ऐसा रम्य जो आत्मा है, उसमें हे जीव ! तू रमक हो। त्वरा से उसमें रमण कर, तथा अन्य की रमणता छोड़। रमता अर्थात् रमणीयता (रम्यस्थान) तो आत्मा में है, अन्य कोई रम्य स्थान नहीं।

पशु-पक्षी, मनुष्यादि देह में, वृक्षादि में जो कुछ रमणीयता प्रतीत होती है अथवा जिसके द्वारा वे सब प्रगट स्फूर्तिवान ज्ञात होते हैं, प्रत्यक्ष सुंदरता युक्त दिखते हैं, वह रमणीयता अर्थात् रमता-रम्यता जीव के कारण है, जिसके बिना सारा जगत शून्यवत् भासित होता है, ऐसी रम्यता जिसका लक्षण है, वह जीव है; जीव न हो तो यह शरीर कैसा लगे ? जीव रहित शरीर-मुर्दा तो देखना भी अच्छा नहीं लगता; जीव के अस्तित्व से सब शोभा है। इस प्रकार जीव में रम्यता है। ऐसे रम्य आत्मा को जानकर त्वरा से उसमें रमक होओ और परभावों की रमणता छोड़ो।

— अब 'ऊर्ध्वता' के अर्थ में श्रीमद् राजचंद्र लिखते हैं कि—कोई भी जाननेवाला, कभी भी, किसी भी पदार्थ को अपनी अविद्यमानता में जाने, ऐसा हो नहीं सकता। पहले अपनी विद्यमानता घटित होती है, तथा किसी भी पदार्थ का ग्रहण-त्यागादि या उदासीन ज्ञान होने से स्वयं ही कारण है; दूसरे पदार्थ के ग्रहण में, उसके अल्पमात्र भी ज्ञान में पहले यदि (जीव) हो, तभी (ज्ञान) हो सकता है—ऐसा सर्व प्रथम रहनेवाला अर्थात् सबसे मुख्य जो पदार्थ है, वह जीव है। उसे गौण करके अर्थात् उसके बिना कोई कुछ भी जानना चाहे तो वह हो नहीं सकता। मात्र वही मुख्य हो, तभी अन्य

कुछ जाना जा सकता है।—ऐसा प्रगट ऊर्ध्वता-धर्म जिसमें है उस पदार्थ को श्री तीर्थंकर 'जीव' कहते हैं।

देखो, अंतर की अध्यात्मदृष्टि से जीव के स्वरूप की यह अलौकिक व्याख्या है। श्रीमद् को अंतर की अध्यात्मदृष्टि थी, जिसके बल से अंदर के सूक्ष्म अध्यात्मभावों को खोलकर अर्थ लिखे हैं। जाननेवाला जीव स्वयं न हो तो पदार्थ को कौन जाने ? 'इन शरीर, मकान सबको मैं जानता हूँ, परंतु मेरा आत्मा है या नहीं उसकी मुझे खबर नहीं है'—इस प्रकार अपने अस्तित्व को स्वयं भूल रहा है। अरे, स्वयं कहता है कि मैं अपने को दिखाई नहीं देता।-यह कैसी मूर्खता है ? कैसा अज्ञान है ?

घट-पट आदि जाण तुं तेथी तेने मान;
जाणनारने मान नहीं,-कहिये केवुं ज्ञान ?
देह न जाणे देहने, जाणे न इन्द्रिय प्राण;
आत्मानी सत्ता बड़े तेह प्रवर्ते जाण।

भाई ! यह सब पदार्थ हैं, वे जानने में आते हैं न ? ....हाँ; तो किसकी सत्ता में वह सब ज्ञात होता है ? जिसके अस्तित्व में सब ज्ञात होता है, वह तू ही है। तू ही सबको जाननेवाला ज्ञानस्वरूप है। देह को कहीं खबर नहीं है कि 'मैं देह हूँ'। 'यह देह है, यह इन्द्रियाँ हैं'—ऐसा जो जानता है, वह स्वयं देहरूप नहीं हुआ है, परंतु देह से भिन्न रहकर उसे जानता है। ऐसा जाननेवाला पदार्थ वह स्वयं जीव है; इसलिए ज्ञानी कहते हैं—

जाननेवाले को जाने बिना धर्म नहीं होता।
जिसने आत्मा को जाना उसने सब जान लिया।

देखो, यह आत्मा के ज्ञानस्वभाव की मुख्यता ! मुख्यता अर्थात् ऊर्ध्वता। 'प्रथम जीव हो, तभी पदार्थ जानने में आते हैं; यहाँ प्रथम अर्थात् पहले आत्मा था और पश्चात् ज्ञेय हुए—ऐसा उसका अर्थ नहीं है; परंतु प्रथम अर्थात् मुख्य, ऊर्ध्व। स्वयं अपने में रहकर सबको जान ले, सबको जानते हुए भी उनसे पृथक् रहे—अधिक रहे, रागादि को जानते हुए स्वयं रागरूप न हो,

स्वयं ज्ञानरूप ही रहे—ऐसा अचिंत्य ज्ञानसामर्थ्य अकेले जीव में है, इसलिए उसमें ऊर्ध्वता है। ऐसे आत्मा को जानने से जीव ऊर्ध्व ऐसी सिद्धगति को प्राप्त करता है। आत्मा जब मोक्ष को प्राप्त करता है, तब एक समय में स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन करके वह सिद्धक्षेत्र में सादि-अनंत काल तक स्थिर रहता है तथा अनंत आनंद सहित सदा निजस्वरूप में विराजता है:—

पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय-प्राप्त सुस्थित जो;
सादि अनंत अनंत समाधिसुखमां,
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो।

जगत के किसी भी पदार्थ को सिद्ध करते हुए उसे जाननेवाला मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसा तो पहले निर्णय होना चाहिए। आत्मा का अपना अस्तित्व निश्चित किए बिना किसी भी ज्ञेय का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता—इसलिए सर्व पदार्थों में आत्मा ऊर्ध्व है।

जगत में अनंत सिद्ध भगवंत हैं, किसने जाना? ....आत्मा ने।

जगत में पंचपरमेष्ठी हैं, किसने जाना? ....आत्मा ने।

जगत में जड़-चेतन तत्त्व हैं, किसने जाना? ....आत्मा ने।

जगत में छह द्रव्य हैं, किसने जाना? ....आत्मा ने।

जगत में अंतरहित आकाश है, किसने जाना? ....आत्मा ने।

इस प्रकार सबको जानने में जाननेवाले की प्रथम मुख्यता है। अनंत सिद्ध भगवंतों का अस्तित्व है—वह किसने जाना? ज्ञान ने। ज्ञान के अस्तित्व में अनंत सिद्धों का अस्तित्व ज्ञात हुआ। तो जिस ज्ञान ने अनंत सिद्ध भगवंतों के अस्तित्व को स्वीकार किया, उस ज्ञान की शक्ति कितनी? वह कितना बड़ा? ऐसे ज्ञानसामर्थ्य द्वारा आत्मा की ऊर्ध्वता एवं महानता है। राग में वह शक्ति नहीं है, राग से रहित ज्ञान में ही ऐसी शक्ति है कि वह ज्ञान स्वयं राग से ऊर्ध्व (-ऊँचा-पृथक्-अधिक) होकर ज्ञानस्वभाव में तन्मय परिणमित हुआ है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानने से महान आनंद होता है और अंतर का द्वार खुल जाता है।—

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है'

अब, जीव में ज्ञायकता तथा सुखस्वभाव है, वह बतलाते हैं:—

(ज्ञायकता—) प्रगट ऐसे जड़ पदार्थ और जीव, वे जिस कारण से पृथक् होते हैं, वह लक्षण जीव का 'ज्ञायकता' नामक गुण है। किसी भी समय ज्ञायकता रहित होकर यह जीव पदार्थ किसी का भी अनुभव नहीं कर सकता, और उस 'जीव' नामक पदार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में ज्ञायकता संभवित नहीं है। ऐसा जो अत्यंत अनुभव का कारण 'ज्ञायकता', वह लक्षण जिसमें है, उस पदार्थ को तीर्थंकर भगवान ने 'जीव' कहा है।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने सरल भाषा में जीव के स्वरूप का अत्यंत सुंदर स्पष्टीकरण किया है। ज्ञानी की अंतरदशा को कोई विरले ही पहिचानते हैं। ज्ञानी के जो न्याय आत्मा का स्पर्श करके निकलते हों, वे शास्त्र-धारणा की अपेक्षा भिन्न प्रकार के होते हैं।

अब 'सुखभास' शब्द का अर्थ कहते हैं; उसमें जीव के सुखस्वभाव की सिद्धि करेंगे।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-7 (नवम्बर-1971), वर्ष-27]

बहिनश्री जीवन परिचय की डीवीडी का विमोचन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : वीरशासन जयन्ती के पावन अवसर पर बहिनश्री चम्पाबेन के जीवन पर हिन्दी में एक डीवीडी का विमोचन हुआ। इसका विमोचन मङ्गलायतन के अध्यक्ष श्री अजितप्रसाद जैन एवं पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन ने किया। पूर्व में यह सी.डी. गुजराती में निकल चुकी है। अभी यह प्रथम बार हिन्दी में निकली है। जिन भी साधर्मियों को यह सी.डी. चाहिए वह सी.डी. पर लिखित पते पर पत्र भेजकर यह सी.डी. मुम्बई से मँगवा सकते हैं। बहिनश्री के जीवन परिचय को सी.डी. के माध्यम से देखने से ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि होगी।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री वट्टकेरस्वामी

भगवान महावीरस्वामी के पश्चात् हुए महान आचार्यों में भगवान आचार्यदेव वट्टकेरस्वामी भी अपने एकमात्र ग्रंथ 'मूलाचार' की रचना से प्रसिद्ध हैं।

आचार्यदेव वसुनंदि की संस्कृत टीका के आधार पर आपका नाम 'वट्टकेर', 'वट्टकेय', 'वट्टरेक' आदि के रूप में उल्लखित हैं। यद्यपि आपका इन नामों में से कोई भी नाम किन्हीं पट्टावलियों या गुर्वावलियों आदि में उपलब्ध नहीं है, फिर भी आचार्यदेव वसुनंदि के मतानुसार आपका नाम वट्टकेरस्वामी स्पष्टरूप से उभरकर आता है।

आपकी रचना 'मूलाचार' की कई गाथाएँ श्वेतांबर ग्रंथ उत्तराध्ययन व दशवैकालिक में मिलती हैं, इस पर से यह सिद्ध होता है कि यह 'मूलाचार' ग्रंथ प्राचीन है, क्योंकि जिस समय ऐसा काल था, कि मुनि आचारादि संबंधित बहुत कुछ विचारधारा जो दिगंबर आचार्यों की थी, वही श्वेतांबर आचार्यों को भी इष्ट थी, क्योंकि दोनों संप्रदायों को अलग-अलग हुए बहुत समय नहीं हुआ था।

आपका नाम किन्हीं पट्टावलियों में नहीं प्राप्त होने से, व गाथाओं की भाषाशैली आदि के आधार से कुछ विद्वानों का यह मत है, कि आचार्यदेव 'वट्टकेरस्वामी' अन्य कोई आचार्य नहीं है, पर हमारे महान आचार्य भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव ही हैं। जो भी हो पर इस पर से यह सिद्ध होता है कि उक्त 'मूलाचार' ग्रंथ अति प्राचीन व महान ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में मुनि भगवंतों के आचारों का सुंदर विवेचन किया है। मुनि भगवंतों का प्रमाणभूत आचार-वर्णन इस ग्रंथ जैसा अन्य ग्रंथों में नहीं प्राप्त होता है।

इस ग्रंथ में 'भावलिंग विहिन द्रव्यलिंग लेने का' निषेध बहुत ही भाववाही शब्दों में कहा गया है, जिसका पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामी कई बार उदाहरण देते थे। अत: 'भावविहीन क्रिया' तनिक भी कार्यकारी नहीं है, अत: भावलिंग ही ग्रहण करना मुमुक्षु को कार्यकारी है। आप भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव के ही समय में अर्थात् ई.स. 127-179 के आचार्य हों, ऐसा विद्वानों का मत है।

आचार्य वट्टकेरस्वामी भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान श्री आचार्यदेव
स्वामी कार्तिकेय अपरनाम कुमारस्वामी

कुमार नाम के आचार्य, पंडित व कवि हुए हैं। जैसे:—

(1) एक नागरशाखा के आचार्य कुमारनंदि, कि जिन्होंने मथुरा के सारस्वत आंदोलन में ग्रंथ रचे थे। (ई.स. 1 के आसपास)

(2) एक कुमारनंदि आचार्य कुंदकुंद के शिक्षागुरु के रूप में याद किया जाता है व उन्हें लोहाचार्य व माघनंदि के आचार्यों के समकालीन अनुमानित किए जाते हैं। (ई.स. 48 से 87 के आसपास)

(3) एक वज्रनंदि के शिष्य तथा लोकचंद्र के गुरु थे। (ई.स. 68 से 119 के बीच—विविध गुर्वावली अनुसार)

(4) एक कुमारस्वामी अपरनाम कार्तिकेय आचार्य जो कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ के रचयिता गिने जाते हैं। (ई.स. 109 से 200 के मध्य)

इस तरह विविधरूप से आगम में इतिहासविदों द्वारा आपके अनेक नाम पाए जाते हैं।

उनमें से यहाँ आचार्यकुमारस्वामी अपरनाम आचार्य कार्तिकेयस्वामी के बारे में ही विचार किया जा रहा है। उनके संबंध में वैसे तो निर्विवाद सामग्री उपलब्ध नहीं होती, फिर भी जितना कुछ आगम के आधारों से इतिहासविदों ने पाया है, वह इस प्रकार है।

आप अग्निनामक राजा के पुत्र थे। आप बालब्रह्मचारी थे; इसी कारण से आपने 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रंथ में पंचबालयति तीर्थंकरों को नमस्कार किया है। आपकी बहन का विवाह रोहेड़नगर के राजा क्रौंच के साथ हुआ था। आपने कुमारवस्था में ही मुनि-दीक्षा धारण की थी, क्योंकि किसी कारण से राजा क्रौंच कार्तिकेय से असंतुष्ट हो गए थे और उसने क्रौंच शक्ति कौंच पक्षी द्वारा आप पर दारुण उपसर्ग किया, जिसे निज आत्मप्रचुरतामय लीनता सह त्रिगुप्तभाव से सहन कर आप स्वर्गलोक को प्राप्त हुए। आपने चंचल मन व विषय-वासना को रोकने के लिए व श्रद्धापूर्वक जिनवचन की प्रभावना हेतु यह अनुप्रेक्षाग्रंथ बनाया है—यह इस ग्रंथ के अंत्यमंगल पढ़ने पर लगता है।

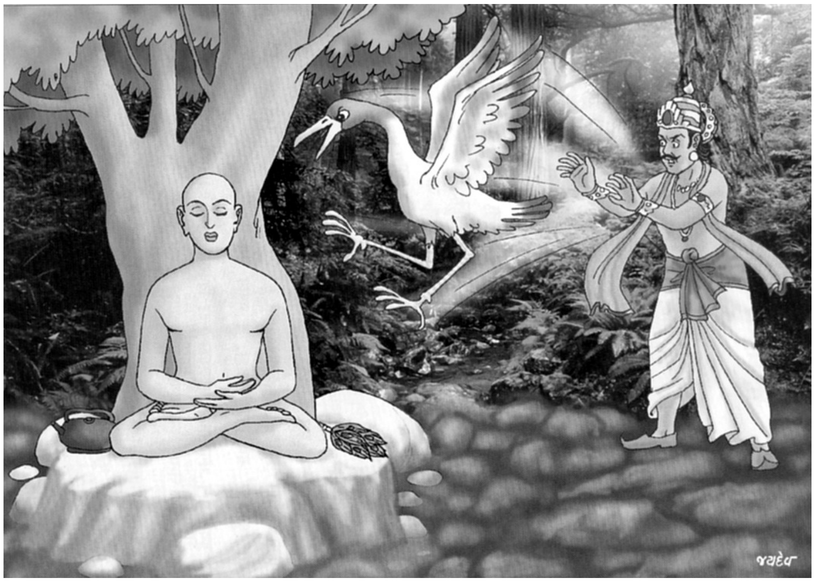

राजा क्रौंच का क्रौंच शक्ति द्वारा मुनिराज कार्तिकेय पर उपसर्ग

कई इतिहासविदों का शिलालेखों के आधार से यह भी मंतव्य है कि उक्त नं. 1 में बताए आचार्यकुमारनंदि और कोई नहीं, पर आप ही थे। आपने ही मथुरा के सारस्वत-आंदोलन में ग्रंथ निर्माण का कार्य किया था। इस पर से इतना तो अनुमान किया जा सकता है, कि आप एक प्रतिभाशाली, आगम-पारगामी व अपने समय के प्रसिद्ध आचार्य थे। इन सब मंतव्यों का एकीकरण करके एकत्व करना यद्यपि मुश्किल है, फिर भी शिलालेखों व आगमाधारों से इतना तो स्पष्ट होता है, कि आप महा वैराग्यवंत, आगम के महाज्ञाता थे, व आपकी अंतर परिणति में इतनी प्रचुर विशुद्धता थी, कि महा उपसर्ग को भी निज आत्मा की मस्ती में नहींवत् सहज वेदते थे।

आपकी एकमात्र 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' कृति प्रसिद्ध है, जो वैराग्य की जननी है।

आपका समय इतिहासविदों ने इसु की द्वितीय शताब्दी का मध्यपाद निर्णित किया है।

आचार्यदेव कार्तिकेयस्वामी को कोटि-कोटि वंदन।

साभार : भगवान महावीर की आचार्य परंपरा

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

मोह का माहात्म्य

सयणाणं वामोहे, लोआ घिप्पंति अत्थ लोहेण।
णो घिप्पंति सुधम्मे, रम्मे हा! मोह माहप्पं ॥19॥

अर्थ : संसारी जीव प्रयोजन के लोभवश पुत्रादि स्वजनों के मोह को ग्रहण करते हैं परंतु यथार्थ सुखकारी जैनधर्म को अंगीकार नहीं करते सो हाय! हाय!! यह मोह (मिथ्यात्व) का ही माहात्म्य है*।

भावार्थ : समस्त जीव अपने को सुखी करना चाहते हैं किंतु सुख का कारण जो जैनधर्म है, उसका तो सेवन करते नहीं और पापबंध के कारण जो पुत्रादि हैं, उनका स्नेह करते हैं—यह मोह का ही माहात्म्य है ॥19॥

विश्राम का वास्तविक स्थान धर्म ही है

गिहवावार परिस्सम, खिण्णाण णराण वीसमट्ठाणं।
एगाण होइ रमणी, अण्णेसिं जिणिंद वरधम्मो ॥20॥

अर्थ : गृह-व्यापार के परिश्रम से खेदखिन्न कितने ही अज्ञानी जीवों का विश्राम स्थान एक स्त्री ही है और ज्ञानी जीवों का तो जिनेन्द्रभाषित श्रेष्ठ धर्म ही विश्राम का स्थान है।

भावार्थ : अज्ञानी जीव स्त्री आदि पदार्थों को ही सुख का कारण मानते हैं किंतु ज्ञानी जीव तो वीतराभाव रूप जैनधर्म को सुख का कारण मानते हैं ॥20॥

ज्ञानी-अज्ञानी की क्रिया-फल में अंतर

तुल्ले वि उअर भरणे, मूढ अमूढाण पिच्छ सुविवागं।
एगाण णरय दुक्खं, अण्णेसिं सासयं सुक्खं ॥21॥

अर्थ : उदर भरने में समानता होने पर भी ज्ञानी और अज्ञानी की क्रिया के फल में अंतर तो देखो—एक को तो नरक का दु:ख प्राप्त होता है और दूसरे को शाश्वत सुख प्राप्त होता है।

भावार्थ : उदर भरकर अपनी पर्याय तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनों ही पूरी

---

* इस गाथा का अर्थ इस प्रकार से भी हो सकता है—'संसारी जीव स्त्री आदि स्वजनों के व्यामोह में अर्थ अर्थात् धन को तो लोभ से ग्रहण करते हैं, परंतु रमणीक जिनधर्म को ग्रहण नहीं करते। अहो! यह मोह का माहात्म्य है।

करते हैं परंतु अज्ञानी तो अत्यंत आसक्तपने के कारण नरक जाता है और ज्ञानी भेदविज्ञान के बल से कर्मों का नाश करके सुखी हो जाता है, अतएव विवेकी अर्थात् भेदविज्ञानी होना योग्य है—यह तात्पर्य है ॥21॥

आगे संसार से उदास होनेरूप विवेक का उपाय बतलाते हैं—

सम्यक्त्व सुगुरु के उपदेश से होता है

जिणमय कहापबंधो, संवेगकरो जियाण सव्वाणं।
संवेगो सम्मत्ते, सम्मत्तं सुद्ध देसणया॥22॥

अर्थ : जिनभाषित जो कथाप्रबंध* हैं, वे सब जीवों को संवेग रूप हैं, धर्म में रुचि करनेवाले हैं परंतु संवेग सम्यक्त्व के होने पर होता है और सम्यक्त्व शुद्ध देशना अर्थात् सुगुरु के उपदेश से होता है।

भावार्थ : शुद्ध निर्ग्रंथ गुरु के मुख से जिनसूत्र सुने तो श्रद्धानपूर्वक धर्म में रुचि होती है। अश्रद्धानी परिग्रहधारी गुरु के मुख से सुने तो श्रद्धान निश्चल नहीं होता—ऐसा तात्पर्य है ॥22॥

किससे शास्त्र सुनना चाहिए

तं जिण-आण-परेण य, धम्मो सोअव्व सुगुरु पासम्मि।
अह उचिओ सद्धाओ, तस्सुवएसस्स कहगाओ॥23॥

अर्थ : अतएव जिन आज्ञा में परायण पुरुष को बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ गुरु के निकट ही शास्त्र श्रवण करना चाहिए और यदि ऐसे गुरु का संयोग न बने तो निर्ग्रंथ गुरुओं के ही उपदेश को कहनेवाले श्रद्धानी श्रावक से धर्म सुनना चाहिए।

भावार्थ : शास्त्र श्रवण की पद्धति रखने के लिए जिस-तिस के मुख से शास्त्र नहीं सुनना, या तो निर्ग्रंथ आचार्य के निकट सुनना या उन ही की आज्ञानुसार कहनेवाले श्रद्धानी श्रावक के मुख से सुनना तब ही सत्यार्थ श्रद्धानरूप फल श्रावक श्रवण से उत्पन्न होगा, अन्यथा नहीं ॥२३॥

सम्यक् कथा, उपदेश व ज्ञान की पहिचान

सा कहा सो उवएसो, तं णाणं जेण जाणइ जीवो।
सम्मत्त-मिच्छ भावं, गुरु-अगुरु लोय-धम्मठिदी॥24॥

* अर्थ—प्रथमानुयोग के शास्त्र।

अर्थ : वही तो कथा है और वही उपदेश है और वही ज्ञान है, जिसके द्वारा जीव सम्यक्-मिथ्या भाव को जान ले तथा लोकरीति[1] और धर्म का स्वरूप जान ले।

भावार्थ : जिनके द्वारा हित-अहित का ज्ञान हो ऐसे जैन शास्त्र ही सुनना, अन्य जो रागादि को बढ़ानेवाले मिथ्या शास्त्र हैं, वे सुनने योग्य नहीं हैं ॥24 ॥

जिनदेव को पाकर भी मिथ्यात्व क्यों नहीं जाता

जिणगुण[2] रयण महाणिहि, लद्धूण वि किं ण जाइ मिच्छत्तं।
अह लद्धे वि णिहाणे, किवणाण पुणो वि दारिद्दं ॥25 ॥

अर्थ : जिनेन्द्र भगवान के गुण रूपी रत्नों का बड़ा भंडार प्राप्त करके भी मिथ्यात्व क्यों नहीं जाता है—यह महान आश्चर्य है अथवा निधान पा करके भी कृपण पुरुष तो दरिद्री ही रहता है, इसमें क्या आश्चर्य है।

भावार्थ : जिनराज को पाकर भी यदि मिथ्यात्व भाव नहीं जाता है तो बड़ा आश्चय है अथवा जिसकी भली होनहार नहीं है, उसका ऐसा ही स्वभाव है- ऐसा जानकर संतोष करना ॥25 ॥

आगे जिन्होंने सम्यक्त्व होने के कारण रूप धर्म पर्व स्थापित किए हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं—

धार्मिक पर्वों के स्थापकों की प्रशंसा

सो जयउ जेण विहिआ, संवच्छर चाउमासिय सुपव्वा।
णिंदजणाण जायइ, जस्स पहावो धम्ममई ॥26 ॥

अर्थ : वे महापुरुष जयवंत हों जिन्होंने उन सांवत्सरिक[3] तथा चातुर्मासिक अर्थात् दशलक्षण एवं अष्टाह्निका आदि धर्म के पर्वों का विधान किया जिनके प्रभाव से निंदनीय-पापी पुरुष भी धर्मबुद्धिवाले हो जाते हैं।

भावार्थ : महारंभी जीव भी इन दशलक्षण आदि पर्वों में जिनमंदिर जाकर धर्म का सेवन करते हैं, इसलिए धर्मपर्वों के कर्ता पुरुष धन्य हैं ॥26 ॥

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

---

1. अर्थ—लोकमूढ़ता।
2. टि०—'जिणमय' शब्द समुचित जान पड़ता है, जिसका अर्थ है—'जिनमत'।
3. अर्थ—वार्षिक।

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में वीरशासन जयंती के पावन दिवस पर ऑनलाईन जैन शिक्षण को संचालित करनेवाली 'मङ्गल विद्यापीठ' का भव्य उद्‌घाटन समारोह सानन्द संपन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 28 जुलाई, शनिवार, प्रातः श्री जिनेन्द्र अभिषेकपूर्वक भगवान महावीर के केवलज्ञान की पूजन की गयी। इसके पश्चात् मङ्गलार्थियों द्वारा गौतम गणधर के आगमन का परिदृश्य प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात् संजय शास्त्री द्वारा दिव्यध्वनि प्रसारण की प्रस्तुति की गई। दिव्यध्वनि की पूजन के पश्चात् मंगल विद्यापीठ का भव्य उदघाटन समारोह संपन्न हुआ।

इस उद्‌घाटन समारोह में मंच पर पण्डित विमलदादा झाँझरी उज्जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन्द्र जैन, विदुषी रुपल जैन, ब्रह्मचारिणी समताबेन, ब्रह्मचारिणी ज्ञानधारा, ब्रह्मचारिणी पुष्पलता उज्जैन आदि महानुभाव विराजमान थे। मङ्गलाचरण के पश्चात् कम्प्यूटर द्वारा उद्‌घाटन फलक को निरावरण किया गया। तत्पश्चात् एक संक्षिप्त वीडियो द्वारा मङ्गल विद्यापीठ द्वारा संचालित ऑनलाईन शिक्षण की व्यवस्था को दिखाया गया। इस नवीन पत्राचार शिक्षण में प्रयोग आनेवाली नवीन सात पुस्तकों का विमोचन हुआ। सप्त भागों का विमोचन हाथरस समाज, सासनी समाज, मङ्गलायतन विश्वविद्यालय, डीपीएस परिवार, श्री अजितप्रसाद जैन दिल्ली, तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार आदि महानुभावों ने किया।

पण्डित सचिन जैन ने इस ऑनलाईन जैनदर्शन शिक्षण के महत्त्व पर प्रकाश डाला। इस मङ्गल विद्यापीठ की संयोजिका श्रीमती रुपल जैन धर्मपत्नी पण्डित सचिन जैन हैं। कार्यक्रम का संचालन पंडित संजय शास्त्री एवं सभी महानुभावों का आभार प्रदर्शन पंडित सुधीर शास्त्री ने किया। दोपहर काल में वीरशासन जयन्ती के अवसर पर श्री सचिन जैन का विशिष्ट व्याख्यान हुआ। रात्रिकाल में श्री विमलदादा झांझरी एवं मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा जिनेन्द्र भक्ति के पश्चात् वीरशासन जयन्ती पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

दिल्ली में वीरशासन जयंती सानंद संपन्न

दिल्ली में – 29 जुलाई दिन रविवार को मुमुक्षु मण्डल दिल्ली एवं दिव्यदेशना ट्रस्ट दिल्ली द्वारा शाह ऑडोटोरियम में वीरशासन जयन्ती महोत्सव धूमधाम से संपन्न हुआ।

एक दिवस पूर्व 28 जुलाई को विश्वासनगर में वीरशासन जयंती पूजन के पश्चात् ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी के द्वारा व्याख्यान किया गया। रात्रि में जिनेन्द्र भक्ति के बाद पण्डित संजय शास्त्री मङ्गलायतन एवं अध्यात्म मनीषी डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का व्याख्यान हुआ।

29 जुलाई प्रात: जिनवाणी की शोभायात्रापूर्वक शाह ऑडोटोरियम में आचार्य एवं ज्ञानियों के चित्र अनावरण हुए। तत्पश्चात् मंचासीन विद्वान एवं महानुभावों का स्वागत हुआ। मङ्गलाचरण के पश्चात् पण्डित संजय शास्त्री द्वारा दिव्यध्वनि प्रसारण प्रस्तुत किया गया। डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल एवं श्री अजितप्रसाद जैन के करकमलों से सप्त भागों का विमोचन भव्यरूप से किया गया। दिल्ली के विभिन्न विद्वानों द्वारा इस प्रसंग पर अपने विचार प्रस्तुत किये गये। डॉ० भारिल्लजी का जिनवाणी की महिमा बतानेवाला ऐतिहासिक व्याख्यान हुआ एवं ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी का प्रेरणात्मक व्याख्यान सुनने को मिला। तत्पश्चात् युवा फैडरेशन उस्मानपुर द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। सम्पूर्ण कार्यक्रम मुमुक्षु मण्डल दिल्ली एवं दिव्यदेशना ट्रस्ट, दिल्ली के तत्त्वावधान में किया गया। श्री अजितप्रसाद जैन दिल्ली का तन, मन, धन से सहयोग प्राप्त हुआ। संपूर्ण कार्यक्रम का संचालन पण्डित संजय शास्त्री मङ्गलायतन ने किया।

अजमेर में 28वाँ आध्यात्मिक बाल एवं युवा प्रौढ़ चेतना शिविर 17 जून से 24 जून तक सानन्द संपन्न

अजमेर : यह शिविर प्रो. श्री अरुणकुमार जैन बंड, जयपुर एवं पण्डित अश्विनजी नानावटी के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ। संयोजक प्रकाशचन्द पाण्ड्या, मनोज शाह, एवं श्रीमती मीनाक्षी बाकलीवाल थीं। मन्त्री मनोज कासलीवाल, एवं अध्यक्ष श्री नरेश लुहाड़िया ने कहा इस प्रकार के धार्मिक शिविर हर वर्ष लगता रहेगा।

वेदी शिलान्यास उत्साहपूर्वक सानन्द संपन्न

आरोन (जिला गुना) : 9 जुलाई से 11 जुलाई 2018 तक नवीन जिनमन्दिर का वेदी शिलान्यास उत्साहपूर्वक सानन्द संपन्न हुआ। कार्यक्रम के प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी अभिनन्दनजी देवलाली, निर्देशक पण्डित संजय शास्त्री मङ्गलायतन एवं विधानाचार्य पण्डित सुनील धवल भोपाल थे। प्रतिदिन शुद्ध परमेष्ठी विधान, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, ब्रह्मचारी अभिनन्दनजी का मोक्षमार्गप्रकाशक पर एवं पण्डित संजय शास्त्री का समयसार पर स्वाध्याय हुआ। सांस्कृतिक कार्यक्रम में संजय शास्त्री द्वारा वैराग्यमय कथाएँ प्रस्तुत की गयीं। मङ्गलार्थी अंकित एवं अंकुर जैन ने महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। सम्पूर्ण समाज ने जिनमन्दिर को शीघ्र पूर्ण करने की भावना भायी।

वैराग्य समाचार

राजकोट : श्री नवीनभाई दुबईवाले, राजकोट में देहविलय हो गया। आप पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त थे, तत्त्वज्ञान से जीवन ओतप्रोत था। काफी समय से अस्वस्थ थे। तीर्थधाम मङ्गलायतन से आपका विशेष प्रेम था।

भीलवाड़ा : ज्ञानमलजी पाटौदी भीलवाड़ा का शान्तपरिणामपूर्वक देहावासन हुआ। आप धार्मिक विचार के व्यक्ति थे।

भीलवाड़ा : अभयकुमारजी अजमेरा भीलवाड़ा का आकस्मिक निधन हो गया। इस वैराग्य प्रसंग पर परिवारीजन धैर्य धारण करते हुए धर्म मार्ग में लगें एवं दिवंगत आत्मा शीघ्र ही आत्मोत्थान को प्राप्त हो – ऐसी भावना है।

अजमेर : श्रद्धेय श्री हीराचन्दजी बोहरा, अजमेर का देवलोक गमन हो गया। आप ख्याति प्राप्त कुशल वक्ता, कोकिल कण्ठी संगीतकार, माँ जिनवाणी के परम भक्त, कलम के धनी, एक विनयवान पुरुष रत्न थे। श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट अजमेर में आपने अमूल्य सेवाएँ प्रदान कीं।

पूना : श्रीमती मंगलाबेन पारेख धर्मपत्नी स्व० श्री नानालालजी पारेख का स्वर्गवास शान्तपरिणामपूर्वक हो गया है। आप तीर्थधाम मङ्गलायतन के पंच कल्याणक में भगवान के माता-पिता बने थे। आप श्रीकान्त पारेख की माताश्री थी। शुरु से ही जिनधर्म की अटूट श्रद्धा रही है तथा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की अनन्य भक्त थीं। आपके सुपौत्र श्री पारस पारेख तीर्थधाम मङ्गलायतन के ट्रस्टी हैं। आपका परिवार तीर्थधाम मङ्गलायतन की नींव से जुड़ा हुआ है।

द्रोणगिरि : प्रसिद्ध विद्वान कोमलचन्दजी टडा, का समाधिपूर्वक निधन हो गया। आप पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त थे। आपने पण्डित टोडरमल स्मारक द्वारा संचालित शिक्षण प्रशिक्षण शिविरों में सदा ही अमूल्य योगदान प्रदान किया है। मुमुक्षु समाज पर आपका बहुत बड़ा योगदान है।

जयपुर : श्री शान्तिलालजी जैन का लम्बी बीमारी के बाद धर्मध्यानपूर्वक निधन हो गया। आप बहुत ही धार्मिक वृत्ति के इन्सान थे। आपके अन्दर जिनधर्म प्रभावना एवं वात्सल्य की भावना कूट-कूट कर भरी थी। आपका सम्पूर्ण परिवार धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थे। आप डॉ० भारिल्लजी के निकट के रिश्तेदार थे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिवंगत आत्माओं के अभ्युदय की मंगल भावनासहित संतप्त परिजनों को संवेदनाएँ प्रेषित करता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में वीरशासन जयंती के पावन दिवस पर ऑनलाईन जैन शिक्षण को संचालित करनेवाली 'मङ्गल विद्यापीठ' के भव्य उद्घाटन समारोह की झलकियाँ

प्रकाशन तिथि - 14 अगस्त 2018 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 अगस्त2018
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित
मङ्गल विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित
मङ्गल प्रज्ञा, मङ्गल प्रज्ञा एवं
मङ्गल प्रभावना के

सप्त भाग सभी विद्वानगण एवं संस्थाएँ तथा विद्यालय डाक राशि-रुपये 100.00 भेजकर नि:शुल्क मँगायें।
सम्पर्क सूत्र :— 9997996346(कार्यालय); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com